Chap-4

चतुर्थ अध्याय

सांस्कृतिक अध्ययन के दृष्टिकोण से काव्य कृतियों का परिचय

सांस्कृतिक अध्ययन के दृष्टिकोण से काव्य-कृतियों का परिचय :

तृतीय अध्याय के अंतर्गत आधुनिक हिंदी कविता की सांस्कृतिक चेतना का जो विवेचन प्रस्तुत किया गया है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसने कवि के कृतित्व की संस्कार जन्य पृष्ठभूमि का निर्माण किया था। इसके साथ - ही यह भी उल्लेखनीय है कि प्रत्येक कवि अपने युग के प्रति सजग रहता है और युगीन परिस्थितियों से संस्कार ग्रहण करके भी अपनी प्रतिभा, चिन्तन तथा जीवन -दृष्टि द्वारा उसे नयी दीप्ति भी प्रदान करता है। दिनकर की रचनाओं के अनुशीलन से इस तथ्य को भलीभाँति हृदयंगम किया जा सकता है। साहित्य और संस्कृति का सदा अटूट सम्बंध रहा है। जिस देश की जैसी संस्कृति होगी, उसका यथार्थ प्रतिबिम्ब साहित्य पर स्पष्ट देखा जा सकता है। हमारे आलोच्य कवि दिनकर की कविताओं में यह स्वर अपने भास्वर रूप में उभरा है। कवि अपनी सर्जना शक्ति से ऐसी कला-कृति का निर्माण करता है जो युग विशेष को आख्यायित करती है।

हिन्दी साहित्याकाश में अनेक ऐसे प्रभासूर्य हुए हैं, जिनकी काव्य-रश्मियों ने अपने युग को आलोकित किया है। किसी भी कलाकार की लेखनी यदि सशक्त है तो वह अपने युग में गति व स्पन्दन लाने के लिए व सही दिशा के निर्देश के लिए जागरण का शंखनाद करती है। इस प्रकार युग द्रष्टा कवि युग स्रष्टा भी बनकर उसे स्थायी प्रेरणा दे सकता है और जिस पर चलकर युग सदैव कृतकृत्य होता आया है। कवि दिनकर ऐसे ही सशक्त कवि कहे जा सकते हैं, जिनकी लेखनी युग की पुकार बनकर प्राय: उभरी है। उनकी दीर्घ-कालव्यापी काव्य यात्रा के अंतर्गत जीवन के विभिन्न सन्दर्भों एवं परिवेशों को कालोचित अभिव्यक्ति देने का उनका प्रयास सराहनीय कहा जा सकता है। क्योंकि उनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि अपने देश व युग के सत्य के प्रति जागरूकता, कवि देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिंतन दोनों स्तरों में ग्रहण करने में समर्थ हुआ है। उसने राष्ट्र को तात्कालिक घटनाओं,

यातनाओं, समता, विषमताओं आदि के रूप में ही नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के रूप में पहचाना है और उसके परम्परागत मूल्यों का नये जीवन सन्दर्भों में आकलन कर उन्हें एक ओर जीवन्तता प्रदान की है, तो दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्त्व देते हुए उन्हें शाश्वत जीवन मूल्यों से जोड़ना चाहा है।[1] अत: उक्त तथ्य के प्रकाश में दिनकर को भारत की राष्ट्रीय संस्कृति का कवि कहा जा सकता है। एक ऐसा देदीप्यमान नक्षत्र कहा जा सकता है, जिसकी लेखनी हिन्दी साहित्याकाश में अपनी प्रभविष्णुता लिए हुए युग की पुकार बनकर प्रतिध्वनित होती रही है।

दिनकर के काव्य की उपर्युक्त सांस्कृतिक चेतना के समग्रतया तथा व्यापक स्तर पर अनुशीलन के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि उनकी काव्य कृतियों का विवेचन सांस्कृतिक अध्ययन के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है और यह प्रस्तुत परिच्छेद का प्रतिपाद्य भी है। विवेचनगत सुविधा के विचार से उक्त विवेचन को रचनाओं के काल-क्रमानुसार दिया जा रहा है।

काव्य-कृतियाँ :

~~रेणु~~ दिनकर जी की काव्य रचना का आरम्भ सन् 1924 से ही हो जाता है। जब उनकी स्फुट रचनाएँ जबलपुर से प्रकाशित होनेवाले पाक्षिक पत्र 'छात्र सहोदर' में छपी थीं। उसके बाद उनकी अनेक कविताएँ 'सेनापति' (कलकत्ता से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र), 'विश्वामित्र' (मासिक पत्र), 'नारायण' और 'सरोज' में छपीं। पटने से निकलने वाले पत्र 'देश' और 'महावीर' में भी उनकी आरंभिक रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं।[2] सन् 1928 में उनकी 'बारदोली विजय' नामक रचना प्रकाशित हुई। इसमें गुजरात के बारदोली में सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा संचालित सत्याग्रह संग्राम का वर्णन है। इसी पर यह गीत लिखे गये हैं। उसके पश्चात् उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त के काव्य 'जयद्रथ-वध' की अनुकृति पर एक छोटा सा खण्ड काव्य लिखा,

जो सन् 1929 में प्रणभंग के नाम से प्रकाशित हुआ ।[3] अत: हम प्रणभंग से ही उनकी व्यवस्थित काव्य-यात्रा का आरम्भ मान सकते हैं ।

प्रणभंग :

यह खण्ड काव्य सन् 1929 में प्रकाशित हुआ था । इसका द्वितीय संस्करण 1974 में प्रकाशित हुआ । जिसमें 1929 ई0 से लेकर सन् 1970 तक की अवधि की कुछ फुटकल रचनाएं जोड़ी गयी हैं । इस प्रबन्ध कृति में विषय-वस्तु की प्रस्तुति कलात्मक ढंग से हुई है । इस काव्य की मुख्य विशेषता अतीत का गौरव गान है । पुराने मिथक को नवीन मूल्यों से जोड़कर युग के प्रति सन्देश कवि का लक्ष्य है । भीष्म - पराक्रम और उसके फलस्वरूप कृष्ण के प्रणभंग के रूपक को कवि ने कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । आरंभिक रचना होते हुए भी यह सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । इसकी भूमिका में विश्वमोहन कुमार सिंह ने लिखा है - ' यह पुष्प तो है छोटा, लेकिन सौरभ से भरा है । उन्मत्त बनानेवाला नहीं, पर धमनियों में शक्ति का संचार करने वाला, मस्तिष्क को निरा श्रृंगार-लोलुप बनाकर दुर्बल बनाने वाला नहीं, वरन् शौर्य के सौन्दर्य से उसे उज्ज्वल करने वाला, निर्जीविता की जगह सजीवता भरने वाला, अंधकार की जगह प्रकाश लाने वाला ।'[4]

दिनकर शक्ति और शौर्य के कवि हैं । इसमें अपने पराक्रम के द्वारा श्रीकृष्ण को भी प्रणभंग के लिए विवश करने का भीष्म द्वारा प्रयास उक्त शौर्य को ही रूपायित करता है । राष्ट्रीय जागरण के सन्दर्भ में यह अतीत के गौरव गान से जोड़ा जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि समकालीन राष्ट्रीय जागरण के लिए उक्त शौर्य और दृढ़ता अपेक्षित है । अत: द्वितीय अध्याय में विवेचित सांस्कृतिक पुनर्जागरण को इस रचना की प्रेरणा के रूप में माना जा सकता है ।

इस काव्य में संगृहीत स्फुट रचनाओं के स्वर में वैविध्य है । कहीं कवि ने

प्रेम के गीत गाये हैं। कहीं जगत की विविध समस्याओं पर दृष्टि निक्षेप किया है। कहीं देश व राष्ट्र के हित बलिदान के स्वर को मुखरित किया है। कहीं दीन-दलितों के आर्त्त क्रन्दन पर आठ आँसू बहाये हैं तो कहीं देश के लिए अपने सर्वस्व का बलिदान करने वालों को भावभीनी श्रद्धांजलि दी है। 'शहीद अशफ़ाक के प्रति' कविता में 1931 ई0 में शहीद होने वाले काकोरी षड्यंत्र से अशफ़ाक उल्ला के बलिदान की गौरव गाथा है। 'मजदूरिन के प्रति' व 'महात्मा गाँधी' जैसी कविताओं में कवि की सांस्कृतिक चेतना का सामाजिक पक्ष प्रस्तुत हुआ है। अतः यह कहा जा सकता है कि इन कविताओं में कवि का प्रमुख स्वर प्रायः राष्ट्रीय सांस्कृतिक ही है, तथा प्रथम उन्मेष भावी रचनाओं का एक आधार भूत पदन्यास कहा जा सकता है।

रेणुका :

रेणुका दिनकर की 1933 ई0 में प्रकाशित वह काव्यकृति है जिससे वे हिन्दी साहित्य में आदर के पात्र बने, इस कविता संग्रह में 29 कविताएँ हैं, जिनमें विविधता है किन्तु प्रधान स्वर वीरता, अतीत गौरव और प्रेम का है। दिनकर का कवि-हृदय वीर और श्रृंगार रस के द्वन्द्व में निरन्तर फँसा ही रहा। वीर रस की कविताओं ने उस कवि को यश दिया और श्रृंगार रस की कविता ने कवि रूप में प्रतिष्ठित किया। जिसका ज्वलन्त प्रमाण 'उर्वशी' है।

इस कविता संग्रह की दो कविताएं 'ताडव' व 'हिमालय' प्रसिद्ध हैं। 'हिमालय' नामक कविता उनके 'हुंकार' कविता-संग्रह में भी है। दोनों कविताएँ क्रांति के आह्वान, के साथ-साथ अतीत के गौरव का गान करती हुई वर्तमान, दशा पर दुःख व्यक्त करती है। 'बोधिसत्त्व' शीर्षक कविता हरिजनों के प्रति शोषण व अत्याचार के ऊपर लिखी गयी है, जिसमें कवि ने अस्पृश्यता के विष के प्रति अन्तर्मन का क्षोभ व्यक्त किया है। 'कविता की पुकार' कविता में कवि ने कृषक

जीवन की अभिशप्त स्थिति, दीन-हीन दशा का करुण चित्र अंकित किया है तथा 'कस्मै देवाय' में आर्थिक विषमता और शोषण की प्रवृत्ति पर प्रहार किया है। इसी कविता में कवि ने विश्व-मानव को एक धरातल पर प्रतिष्ठित करने की कामना व्यक्त की है।

'विश्व छवि', 'अमा संध्या', 'फूल', 'गीतवासिनी' आदि कविताओं में काव्य- सौन्दर्य और सुघड़ कलात्मकता है। 'कला-तीर्थ' कविता में प्रेम और सौंदर्य का गान करते हुए कर्तव्य की गरिमा को मुखरित किया है। 'परदेशी' और 'जीवन-संगीत में जीवन की नश्वरता, चिरन्तन पीड़ा और सुन्दरता के नष्ट होने की स्थिति का कवि वर्णन करके यही कहना चाहता है कि इस जीवन में सभी नश्वर है। परिवर्तन सबको अपना ग्रास बना लेता है।

'विधवा' में कवि ने उसके करुण जीवन का चित्रण किया है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि इस संग्रह में विषय का वैविध्य है, पर प्रधानता है, प्रेम-सौंदर्य, जगत् की परिवर्तन शीलता, राष्ट्र प्रेम और अतीत गौरव गान की। इन सभी का सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

हुंकार :

यह रचना सन् 1939 में प्रकाशित हुई है जो स्फुट रचनाओं का संग्रह है। शीर्षक 'हुंकार' ही यह स्पष्ट व्यंजित करता है कि कवि वीरत्व का आह्वान करके जीवन की उस कठोर व यथार्थ भूमि को तोड़ना चाहता है, जो परतंत्रता की जंजीरों से जकड़े हुए विशाल जन-समूह को ऐसी कर्मनिष्ठा प्रदान करे। वस्तुत: 'हुंकार' क्रांति का आह्वान है तथा पुरातन गरिमामयी एवं उदात्त परम्परा की ज्वलनशील स्मृति में दबी- युग क्रान्ति का स्फुलिंग भी है।

इस संग्रह की 29 कविताओं में 'दिल्ली' और 'हिमालय' जैसी प्रसिद्ध कविताएं भी हैं। दिनकर जी के इस काव्य- संग्रह के अनुशीलन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उनमें यौवन के उफान के साथ जीवन का ज्वलनशील स्पन्दन है तथा प्राणों में अप्रतिहत शक्ति है। वे जीवन की कोरी भावुकता से अनासक्त रहकर क्रान्ति का आह्वान करते हैं तथा आर्थिक विषमता का बहुत करुण चित्र अंकित करते हैं। इसके अतिरिक्त अतीत के गौरव गान में उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को भास्वर स्वर दिया है। सामाजिक जीवन के व्यतिक्रम को तथा दलित-पीड़ित मानव के प्रति उदासीनता की भावना को मुखर अभिव्यक्ति दी है और हिन्दू तथा मुस्लिम के पारस्परिक विद्वेष की भावना के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है।

'असमय आह्वान', 'आलोक धन्वा', 'दिगम्बरि :' अनल किरीट' और विपथगा कविताओं में सशक्त क्रान्ति की भावना अभिव्यक्त हुई है। 'हिमालय' कविता अहिंसा व हिंसा का संघर्ष है अर्थात् वे कायरता से वीरता को श्रेष्ठ समझते हैं। तत्कालीन युग का यथार्थ वर्णन जैसा वे चाहते थे, उसी रूप में अंकित किया है —

'रे, रोक युधिष्ठिर को न यहाँ
जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गाण्डीव गदा
लौटा दे अर्जुन भीर वीर'[5]

इस कविता में एक ओर अतीत के गौरव का स्मृत्यात्मक स्वरूप अंकित है तो दूसरी ओर भविष्य के प्रति आशा और विश्वास का भाव दिखाया गया है। युधिष्ठिर और अर्जुन के मिथकों के माध्यम से वे एक प्रकार से गान्धीवादी सत्य और अहिंसा की नीति के स्थान पर सशक्त या आतंकवादी क्रान्ति का आह्वान करना चाहते हैं। स्पष्ट है कि कवि वर्तमान जन-जागरण में अतीत के शौर्य तथा अन्य जीवन-मूल्यों की प्रेरणा का संचार करना चाहता है। युगीन राजनीतिक परिस्थितियों के सम्बंध

में विचार करें तो चन्द्रशेखर आजाद तथा सरदार भगतसिंह प्रभृति क्रान्तिकारियों के बलिदान के पश्चात् सन् 1938 के आस-पास कांग्रेस का नेतृत्व नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के हाथ में आया जो सशक्त क्रान्ति पर विश्वास करते थे और इसके साथ ही राजनीति का यह नया मोड़ वस्तुत: सन् 1942 की क्रान्ति, नाविक विद्रोह तथा साथ ही आजाद हिन्द फौज के निर्माण तथा उसके इतिहास प्रसिद्ध अभियानों की पृष्ठभूमि बना। अत: हुंकार की कविताएँ सांस्कृतिक-राष्ट्रीय चेतना को अनुप्राणित होने के साथ-साथ सांस्कृतिक अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं।

रसवन्ती :

यह रचना सन् 1940 में सर्वप्रथम प्रकाशित हुई थी। यह 31 कविताओं का संग्रह है। जिनमें से अधिकांश प्रेम विषयक हैं। किन्तु कवि की प्रेम-विषयक धारणा रीतिकालीन रुग्ण मनोवृत्ति से सर्वथा मुक्त है। उसमें सहजता है और उन्मुक्तता है जो छायावादी प्रेम का आवृत्त स्वरूप न होकर उन्मुक्त सरित् प्रवाह के समान इसमें प्रसादमयता है। यह उत्तर छायावादी मांसल प्रेम-भावना से सर्वथा अलग प्रवृत्ति है जो वस्तुत: 'दिनकर' की अपनी विशेषता है।

यद्यपि इस कविता-संग्रह में प्रेम- राग की प्रधानता है किन्तु दिनकर ने अपनी राष्ट्रीय सांस्कृतिक मनोवृत्ति का भी परिचय दिया है जो उनके भावी विकास का सूचक है। कवि पीड़ितों के आर्तनाद के प्रति संवेदनशील है। वह प्रेम के बन्धन को शिथिल कर उनके लिए अमृत की खोज में निकल पड़ता है। विश्व की मंगल-कामना की ओर कवि को उन्मुख कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ 'दाह की कोयल' कविता में कवि को पिक की पुकार मधुरता का अनुभव न कराकर उसे कष्ट देती है, क्योंकि उसे सारा जगत वैश्वानर के दाहक ताप में जलता दिखाई देता है। 'कवि' कविता में विश्व वेदना से उत्पन्न छटपटाहट प्रकट होती है। वह सर्वत्र पीड़ा का ही संसार देखता है।

'प्रतीक्षा' कविता में कवि उस पुण्य प्रभात की प्रतीक्षा करता है जो समस्त संसार को जग-जग को अपनी स्वर्णिम आभा से परिपूर्ण कर दे, किन्तु वह जानता है कि जीवन तो दु:ख का ही पर्याय है, गरल का ही साज है, पर जो भीतर के दु:ख को उच्छलित नहीं होने देता, वही महान है।

हम यही पाते हैं कि उनका यह काव्य-संग्रह जनजीवन की पीड़ा से प्रेरित होकर कवि के समाज-जीवन के बहुपक्षीय चिन्तन तथा संवेदना को प्रकाश में लाता है। अत: युगीन सांस्कृतिक चेतना एवं संवेदना को स्वर देने के कारण प्रस्तुत अनुशीलन में सहायक कही जा सकती है।

द्वन्द्वगीत :

दिनकर जी की यह रचना भी सन् 1940 में ही प्रकाशित हुई है। इसमें कवि का अन्तर्द्वन्द्व ही अभिव्यक्त हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। कवि के समक्ष एक ओर अविरल सृष्टि की सुन्दरता है तो दूसरी ओर उसकी नश्वरता का भी ध्यान है। वह प्रेयसी की आकर्षक और सौन्दर्य-राशि से प्रभावित है तो दूसरी ओर परिवर्तन के निर्दय प्रहार से उसका निष्प्रभ हो जाता है। चारों ओर के असीम प्राकृतिक सौंदर्य में कवि विभोर हो जाता है। साथ ही प्रिया की टेढ़ी चितवन और बाँकी अदा पर रीझ-रीझ उठता है। वस्तुत: इन कविताओं में प्रेम और सौंदर्य का जीवन-दर्शन है। जिसमें न तो सांस्कृतिक चिंता धारा का यथेष्ट रूप परिलक्षित होता है और न कवि का समाज-चिन्तन ही। ये रचनाएं प्राय: भावुक अंत:करण के द्वन्द्व को प्रकाशित करती हैं। संक्षेप में ये भारतीय जीवन-दर्शन तथा व्यक्तिगत रुचि को प्रस्तुत करती हैं।

कुरुक्षेत्र :

कुरुक्षेत्र दिनकर जी की एक विख्यात कृति है, जिसका सर्वप्रथम संस्करण

सन् 1946 में हुआ । कवि ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि उन्हें इस काव्य की प्रेरणा महाभारत के युधिष्ठिर और भीष्म के संवाद से मिली । इसमें आधुनिक युग की समस्या युद्ध पर विचार व्यक्त किये गये हैं । यद्यपि इसका कथानक बाह्यत: महाभारत पर आधारित है, तथापि नवयुवकों को सामाजिक अन्याय के विरुद्ध अस्त्र उठाने और अनीति का सामना करते हुए नवीन समाज के निर्माण की प्रेरणा दी गयी है । छठे सर्ग में आधुनिक वैज्ञानिकता का सांस्कृतिक दृष्टिकोण मूल्यांकित है ।

इस काव्य में दिनकर का मुख्य मंतव्य है कि अन्याय का अंत युद्ध से ही हो सकेगा । उनके अनुसार युद्ध का दायित्व समष्टि पर न होकर व्यष्टि पर होता है । व्यक्ति की विद्वेषपूर्ण अन्तर्ज्वाला का ही युद्ध रूप में विस्फोट होता है, जिसमें देश के देश नष्ट हो जाते हैं । भीषण नर-संहार होता है और सब कुछ भस्मीभूत हो जाता है । उन्होंने यह विचार भी किया है कि क्या युद्ध स्वाभाविक वस्तु है ? उनके अनुसार साधारणत: मनुष्य युद्ध नहीं चाहता । विवशतावश ही उसे युद्ध करना पड़ता है और युद्ध का परिणाम होता है विनाश, अव्यवस्था और गहन मनस्ताप । विजेता अन्तत: ग्लानि और पश्चाताप की आग में झुलसता है, उसके सामने यही प्रश्न मंडराता रहता है कि उसने इतना भीषण नर-संहार क्यों किया ? कवि ने युधिष्ठिर की यही स्थिति दिखायी है और प्रतिशोध पर स्थित युद्ध को नैतिक और निष्पाप माना है -

पाप हो सकता नहीं वह युद्ध है,
जो खड़ा होता ज्वलित प्रतिशोध पर ।[6]

~~कवि-ब~~ कवि के अनुसार तप, करुणा, विनय तथा त्याग आदि व्यक्ति धर्म हैं, सामूहिक या सामाजिक नहीं । उसने सामाजिक न्यास और समता की भी बात कही है किन्तु युद्ध के रास्ते से । इसे जागृति और क्रान्ति का आह्वान भी लक्ष्य किया जा सकता है ।

कवि ने `रश्मिलोक` की भूमिका में लिखा है कि `कुरुक्षेत्र` उन सभी भावनाओं का परिपाक है जो आरम्भ से ही मुझे आंदोलित करती आ रही थीं। कुरुक्षेत्र में महात्मा गांधी के विचारों का प्रतिनिधित्व युधिष्ठिर करते हैं, किन्तु जो नवयुवक गांधी जी की अहिंसा को धर्म के रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। उनके प्रतिनिधि अथवा प्रतीक भीष्म हैं।[7] अत: इसमें एक ओर अहिंसात्मक आन्दोलन और सशस्त्र क्रान्ति का द्वन्द्व है तो दूसरी ओर कुछ वर्ष पूर्व हुए विश्व युद्ध के प्रति एक भारतीय विचारक की प्रतिक्रिया भी है।

सामधेनी :

मुक्तक कृतियों का यह रचना संग्रह सन् 1947 में प्रकाशित हुआ। अत: यह स्पष्ट है कि संगृहीत कविताएँ स्वतंत्रता पूर्व की हैं। देश में व्यापक संघर्ष चल ही रहा था। `दिनकर` ने इस संग्रह में अपने सांस्कृतिक दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से रखा है। एक ओर उनमें राष्ट्रीयता की उदात्त भावना है तो दूसरी ओर हिन्दू- मुस्लिम समस्या के प्रति गहरी चिन्ता है। एक ओर स्वातंत्र्य के लिए उद्दाम भावना है तो दूसरी ओर विश्व स्तर पर शांति की समुज्ज्वल ललक भी है, एक ओर युद्ध के लिए हिंसा व आक्रोश है तो दूसरी ओर अहिंसा और विश्व-बन्धुत्व की उत्कट अभिलाषा है तथा एक ओर कृष्ण की मुरली की मधुरिमा के ऊपर पांचजन्य का युद्धगीत आह्वान है तो दूसरी ओर जयप्रकाश के त्यागमय जीवन के भास्वर स्वरूप का विनत आख्यान है। वस्तुत: अपने समग्र रूप में यह कविता संग्रह संस्कृति के उपर्युक्त आयामों को प्रकाशित करता है और कलात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

इस संग्रह में 21 कविताएँ हैं। जिनमें अतीत के द्वार पर`, `कलिंग विजय`, `दिल्ली और मास्को`, `जवानियाँ` और `जयप्रकाश` कविताएँ प्रभावमयता और भावभूमि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि कवि ने अनेक विषयों को स्पृष्ट किया

है, किन्तु प्रमुख विषय देश भक्ति और राष्ट्रीयता है। 'आग की भीख', कविता राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत है। आर्थिक विषमता, दैन्य और शोषण की ओर भी कवि का ध्यान गया है, किन्तु वह यह जानते हैं कि जब तक मनुष्य बहिर्जीवन को ही सब कुछ समझता रहेगा, निखिल मानवता का कल्याण नहीं हो सकेगा। मनुष्य बुद्धि-विलास में लीन है, पर उसका अन्तर्मन सूखा है।

> अर्वा सकल बुद्धि से पाई,
> हृदय मनुज का भूखा है।
> बढ़ी सभ्यता बहुत, किन्तु
> अन्त: सर अब तक सूखा है।[8]

~~इस~~- यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इसके द्वारा भारतीय संस्कृति का जीवन के प्रति अन्तर्मुखी दृष्टिकोण प्रकट हुआ है। वस्तुत: कवि बुद्धि और मन के सामंजस्य में मानव-जाति का कल्याण देखता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि विषय-वस्तु और अभिव्यंजना-शिल्प दोनों दृष्टियों से इस कविता-संग्रह में कवि दिनकर अपनी सृजन यात्रा पर आगे बढ़े हैं।

बापू :

बापू काव्य की रचना उस समय हुई थी, जब बापू सन् 1947 में नोआखली की यात्रा कर रहे थे, किन्तु इस काव्य के दूसरे संस्करण में कवि ने बापू की मृत्यु पर रचित शोक-काव्य को भी सम्मिलित कर दिया है। दिनकर की दृष्टि में 'यह छोटी सी पुस्तक विराट के चरणों में वामन का दिया हुआ क्षुद्र उपहार है।[9] प्रतीत होता है कि गांधी जी के अद्वितीय साहस तथा मानवता की उदात्त भावना ने कवि को प्रेरणा प्रदान की।

कवि ने बापू की सादगी के प्रभाव का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। भारतीय संस्कृति ने जिस सत्य, अहिंसा, करुणा, मैत्री, अस्तेय और वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे - विचारों को आत्मा व मन के सूक्ष्म तत्वों के रूप में विकसित किया है, उन्हीं के जीवन्त विग्रह बुद्ध हैं, स्वामी महावीर हैं और महात्मा गांधी हैं। महात्मा गांधी में बुद्ध व महावीर की अहिंसा व करुणा ही नहीं है- वरन् राम और कृष्ण की तितिक्षा सहिष्णुता व विभुता भी है। इसीलिए वे बुद्ध, प्रबुद्ध, शुद्ध और अपरिमेय शक्ति सम्पन्न तथा भारतीय संस्कृति के सार तत्व के जीवन्त विग्रह भी हैं।

विभाजन की घृणित प्रतिक्रियाओं ने नर को पशु से भी हीन बना दिया और पुरुष की नृशंस पशुता का शिकार नारी बनी। कवि ने गांधी जी को पौराणिक संदर्भ से बांधकर आज का कृष्ण कहा है, जो उनकी सांस्कृतिक चेतना का द्योतक है-

बापू ! तू कलि का कृष्ण
    विकल आया आँखों में नीर लिए
थी लाज द्रौपदी की जाती
    केशव सा दौड़ा चीर लिए।[10]

इस काव्य संग्रह में कवि ने बापू के चरित्र के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रमुख स्वर विश्व बंधुत्व व मानवता को प्रबल स्वर दिया है। इन्हें अपनी संस्कृति का एक पुंजीभूत तत्त्व मानकर वह संस्कृति के सभी पक्षों को सहजता से उद्घाटित करते हैं। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि संघर्ष और शौर्य के इस कवि का चिन्तन की दृष्टि से इस रचना के माध्यम से एक नया मोड़ आरम्भ होता है।

इतिहास के आँसू :

दिनकर की यह रचना सन् 1921 में प्रकाशित हुई है। यह दिनकर जी का अतीत गौरव गान विषयक या इतिहास-विषयक अवबोध से सम्बद्ध दस कविताओं का संग्रह है, जिनमें मगध-महिमा नामक पद्य नाटिका भी है। यह नाटिका बहुत

महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें कवि ने मगध के अतीत वैभव और गौरव का गान करते हुए भारत की वर्तमान दीन-हीन दशा का करुण चित्र अंकित किया है। दिनकर जी अपने अतीत प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने वर्तमान दयनीय दशा से मुख मोड़कर अतीत की ओर पलायन किया है, वरन् उन्होंने अतीत के गौरवमय इतिहास के साक्ष्य पर वर्तमान एवं भविष्य के निर्माण की कामना व्यक्त की है। अतीत की सांस्कृतिक विरासत को उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से जीवन्त और भास्वर बनाया है। उन्होंने भारत के इतिहास में शौर्य के साथ करुणा और मैत्री को देखा है। अपार वैभव व जीवन का स्वर्णिम स्वरूप देखा है। व्यक्ति और राष्ट्र का स्वाभिमान देखा है। गौतम बुद्ध की करुणा, निखिल मानवता की मंगल कामना देखि है। चन्द्रगुप्त का शौर्य और शत्रु के प्रति आदर देखा है। अशोक की कलिंग विजय तथा युद्धोपरान्त अहिंसा का संवरण देखा है। मानव-मानव के पारस्परिक दुर्व्यवहार और अस्पृश्यता की निन्दा भावना से पीड़ित होकर बोधिसत्व का आह्वान किया है। मुगलकाल का वैभव व अकबर की महानता का स्मरण किया है। प्रताप और शिवाजी के बलिदान तथा राष्ट्र के गौरव की स्तुति की है। इन सबका पुनर्स्मरण करने का उद्देश्य कवि की मात्र 'अतीत-गाथा नहीं', अपितु वर्तमान दयनीय दशा को दूर करने का उसका संकल्प भी है।

संक्षेप में कहा जाय तो इस संग्रह की कविताएँ दिनकर के भारतीय सांस्कृतिक धारा के ऐतिहासिक अवबोध का साक्ष्य उपस्थित करती हैं। उनके इस ऐतिहासिक अवबोध का विस्तृत अनुशीलन प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। ये कविताएँ प्राय: उसी अवबोध की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति हैं जिनका सांस्कृतिक अध्ययन के दृष्टिकोण से निजी महत्त्व है।

<u>धूप और धुँआ :</u>

यह रचना भी 1951 की है। इसमें स्वतंत्रता के बाद की 31 रचनाएँ संगृहीत हैं।

कवि ने दो शब्द में लिखा है कि स्वराज से फूटने वाली आशा की धूप और उसके विरुद्ध जन्मे हुए असन्तोष का धुँआ, ये दोनों ही इन रचनाओं में प्रतिबिम्बित मिलेंगी।[11] वस्तुत: इन कविताओं में कवि की भावात्मक प्रतिक्रियाएँ अंकित हुई हैं। स्वराज्य से जनता जनार्दन में नयी आशा का संचार हुआ। युवकों के हृदय नयी उमंगों से लहराने लगे। प्रबुद्ध वर्ग भी यह सोचने लगा कि जीवन का नवप्रभात फूटा है। जिसमें चिर संचित आशा लतिकाएँ हरी-भरी होंगी, पर आशा की धूप कम ही मिली। कुहासे और धुँएं ने गगन मंडल को ढक लिया। दिनकर ने इन्हीं अवस्थाओं को इस संग्रह में अभिव्यक्ति दी है।

'नई आवाज' कविता में कवि ने नये अन्दाज से नव-निर्माण की बातें कही हैं। उसे आशा है कि स्वराज्य के उदय के साथ जीवन के नये अंकुर फूटेंगे, किन्तु 'निराशावादी कविता में यह साफ झलकता है कि कवि की समस्त आशाओं पर तुषारापात हो गया है। 'व्यष्टि' कविता में कवि व्यष्टि के एकाधिकार की बात करते हुए समष्टि के मंगल के घातक तत्त्वों पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रहार करता है।

'अरुणोदय' स्वराज्य के उदय को उजागर करने वाली कविता है। कवि का आस्थावान मन स्वराज्य के उदय से आनन्द और आह्लाद की तरंगों पर थिरकने लगता है। वह समस्त बलिदानों का स्मरण करते हुए भारत के मंगलमय भविष्य की कामना करता तथा आजादी को भारतवासियों के लिए चुनौती मानता है, क्योंकि देश खंडहर हो गया है और उसका जीर्णोद्धार किन्हीं कर्मठ व्यक्तियों के तपोनिष्ठ जीवन से ही संभव है।

'जनतंत्र का जन्म' कविता में दिनकर ने दीन-हीन मजदूरों और किसानों को जनतंत्र का देवता माना है -

देवता कहीं सड़कों पर, गिट्टी तोड़ रहे,
देवता मिलेंगे, खेतों में, खलिहानों में ।[12]

'भारत' कविता में कवि का जबर्दस्त व्यंग्य है । कवि को दो तीन वर्षों में ही यह अनुभव हो गया है कि देश के नेता अपने स्वार्थों में निमग्न हैं । उन्हें देश की चिन्ता नहीं है । फिर भी कवि उक्त विषमता से निराश नहीं है उसे भावी जागृति के प्रति आस्था है । अतः यह कहा जा सकता है कि कवि ने इन कविताओं में मूक युग-चेतना को वाणी दी है ।

रश्मिरथी :

सन् 1951 में प्रकाशित यह दिनकर जी का प्रबंध काव्य है, जिसमें रश्मिरथी (जिसका रथ पुष्प का हो) कर्ण के चरित्र का आख्यान है । कवि ने स्वतंत्रता के पश्चात् समाज की जिस चेतना को रश्मिरथी के माध्यम से प्रस्तुत किया है, उसे निःसन्देह सराहनीय कहा जा सकता है ।

यद्यपि यह विषय महाभारत का ही है और महाभारतकार ने कर्ण से जिस वाक्य को बड़ी निष्ठा के साथ कहलवाया है कि-' दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्' उसी को दिनकर आधुनिक संदर्भ में इस प्रकार कहते हैं -

जाति जाति रटते, जिनकी पूंजी केवल पाषंड,
मैं क्या जानूं जाति ? जाति है ये मेरे भुजदंड ।[13]

रश्मिरथी में कवि का सामाजिक दृष्टिकोण प्रकारान्तर से प्रस्तुत हुआ है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समाजवादी समाज व्यवस्था का जो वातावरण तैयार किया गया उसके संदर्भ में इस कृति की सोद्देश्यता को लक्ष्य किया जा सकता है । इसके सामाजिक

दृष्टिकोण पर विस्तार से आगे विचार किया जायेगा । यहाँ संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संस्कृति के सामाजिक पक्ष के अनुशीलन के दृष्टिकोण से इस कृति में मूल्यवान सामग्री प्राप्त होती है ।

दिल्ली :

दिनकर जी का यह काव्य-संग्रह स्वतंत्रता के पश्चात् सन् 1954 में प्रकाशित हुआ था । इसमें चार कविताएँ संग्रहीत हैं । पहली कविता सन् 1933 में लिखी गयी थी, किन्तु उसकी पृष्ठभूमि सन् 1929 की है, जबकि नयी दिल्ली का प्रवेशोत्सव मनाया गया था और उसी वर्ष भगतसिंह पकड़े गये थे तथा कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकार किया था । इस कविता में यही पृष्ठभूमि अभिव्यक्त हुई है । उत्सव और दमन तथा सत्याग्रह आंदोलन के विविध रूपों को कवि ने अंकित किया है ।

'दिल्ली और मास्को' कविता में कवि ने मास्को के साम्य दर्शन और साम्यवाद को महत्त्व देते हुए उन भारतीयों को धिक्कारा है जो गुलामी के बन्धन को तोड़े बिना साम्यवाद का नारा लगाते हैं और मास्को के संकेत पर नाचना पसन्द करते हैं । ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उसे सन् 1942 की क्रान्ति में साम्यवादी असहयोग की प्रतिक्रिया ही कहा जाएगा ।

'एक-ए

'हक की पुकार' और 'भारत का यह रेशमी नगर' कविताओं में दिनकर ने दिल्ली , दिल्ली की सत्ता तथा दिल्ली के स्वार्थी शासकों पर ~~व्य~~ व्यंग्यात्मक प्रहार करते हुए यह दिखाया है कि एक ओर देश में चारों ओर दु:ख, निराशा, पीड़ा तथा भूख का अंधकार छाया हुआ है तो दूसरी ओर दिल्ली में लोग अपने ही सुख में डूबे हुए हैं ।

विलास में, सुख साधनों के पीछे है, भयानक विषमता है। 'दिल्ली सुख के सपनों में' डूबी हुई और सारा देश दु:ख दैन्य से विजड़ित। दिल्ली हमारी शिराओं का केन्द्र है, लेकिन विषमता की बात यह है कि देश की बेचैनी केन्द्र को बेचैन नहीं कर पा रही है।[14]

इस प्रकार इस संग्रह की चारों कविताएँ प्राय: एक ही मर्मस्थल का स्पर्श करती हैं। दिल्ली अतीत के गौरव का प्रतीक होते हुए भी अंग्रेजों के शासन काल में और स्वतंत्रता के पश्चात् भी अपना अलग व्यक्तित्व विकसित करने लगी है। देश की पीड़ा और व्यथा से अछूती रहकर वह अपने आप में ही लीन है। फलत: राष्ट्र की वाणी का प्रतिनिधित्व करने में असफल रही है। एतद्विषयक कवि की प्रतिक्रिया उसके प्रकाशित पत्रों में भी देखी जा सकती है। अत: यह कवि का युग के प्रति सजग चेतना का परिचायक है।

नीम के पत्ते :

यह रचना संग्रह भी सन् 1954 में प्रकाशित हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात् स्वशासन के प्रति विद्रोह की भावना इन रचनाओं में यत्र-तत्र मिलती है। लगभग सभी कविताएँ व्यंग्यपरक हैं। देश के अगणित नेताओं ने स्वतंत्रता की लड़ाई में बलिदान दिये किन्तु स्वतंत्रता के बाद वे ही नेता अपनी स्वार्थ साधना में सारे जीवन-मूल्यों को भुला बैठे। वे अपने देश की जनता के दु:ख को भूल गये। कवि जनता के इसी दर्द से स्पंदित होता है। उसे प्रतीत होता है कि देश के भूखे-नंगे लोगों से बलिदान की आशा करना व्यर्थ है। यदि देश पर फिर विपत्ति आयी तो कौन बलिदान करेगा ? आजादी के बाद की छीना-झपटी का दर्द कवि दिनकर के हृदय को कचोटता रहा, सम्भवत: इसीलिए वे तज्जन्य पीड़ा को गीतों के माध्यम से देशवासियों को सुनाकर सतत् सचेत करते रहे हैं। स्वतंत्रता की प्रथम

वर्षगांठ के समय कवि ने देश की मार्मिक स्थिति का स्पष्ट एवं जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है।

राष्ट्रकवि अपने देश की धरती और जनता से प्रेम करता है। उसके हृदय में देश के प्रति अपना सब कुछ अर्पित करने वाले जननायकों के प्रति अपार श्रद्धा है।

इस संग्रह की कविताओं में देश भक्ति की अपेक्षा सामयिक प्रेरणा की प्रधानता है। राष्ट्रीयता का रसात्मक रूप दिनकर की उन कविताओं में मिलता है जिनकी प्रेरणा सम-सामयिक है लेकिन उनमें देश भक्ति की प्रधानता है। प्रकाशन वर्ष सन् 1954 होने के कारण उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में इन कविताओं का रचना-काल सन् 1948 से सन् 1954 के बीच का माना जा सकता है। इन कविताओं में स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् शासन की विकृतियों की कटु आलोचना के साथ जन-साधारण के प्रति गहरी संवेदना की अभिव्यक्ति इसके 'नीम के पत्ते' शीर्षक को सार्थकता प्रदान करती हैं, जिनमें कोरी आलोचना तथा पीड़ा ही नहीं अपितु उद्देश्यगत उदात्तता भी है।

नीलकुसुम :

यह कविता-संग्रह भी सन् 1954 में प्रकाशित हुआ है, किन्तु इसमें दिनकर की 1950 तक की चालीस कविताएं संगृहीत हैं। सन् 1943 के आसपास से हिन्दी में प्रयोगवादी काव्य-धारा का आरम्भ हो गया था। कवि अपने को प्रयोगवाद के प्रवर्तकों में तो नहीं, पर पिछलग्गुओं में रखना चाहता है।[15] वस्तुतः दिनकर में प्रयोग की वह प्रवृत्ति नहीं है जो अज्ञेय आदि कवियों में दिखायी पड़ती है। विषय-वस्तु और अभिव्यंजना-शिल्प दोनों दृष्टियों से इस संग्रह की रचनाएं उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं के विकास का ही साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। पहले उनमें जो क्रांति

की भावना उबाल पर थी, वह स्वातंत्र्योत्तर स्थिति में युगानुरूपत: संयमित हो गयी है और उनमें चिंतन का पक्ष प्रधान हो गया है। अभी तक जो कवि राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय संस्कृति और यत्र-तत्र सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में अपनी प्रतिभा का उन्मेष दिखाता रहा, वह अब शनै: शनै: विश्वमानव और विश्व-संस्कृति की ओर उन्मुख होने लगा तथा सामान्य मानव की भूख, पीड़ा, त्रास, नग्नता से कंपित हो उनके समाधान के पथ-संधान में लग गया। कवि को अब भी विश्वास है कि भारत अब भी अपनी महार्घ, अतीत सांस्कृतिक परंपरा से प्रेरणा ग्रहण कर विश्व- मानव की विभीषिका, जिघांसा और शोषण की प्रवृत्ति तथा मानव-मानव की दूरी को समाप्त कर सकता है। 'हिमालय का संदेश' कविता इसका निदर्शन है।

इस कविता -संग्रह में प्रेम के पवित्र स्वरूप, जीवन के विविध रूप, मानव के सपने और संकल्प शक्ति, अतीत प्रेम के साथ नवीनता को अपनाने का आग्रह, मानवीय लघु वृत्तियों, कला-साधना, जनतंत्र, जनशक्ति, मानवीय कोमल भावनाओं के विकास की भावना, गांधी और मार्क्स के विरोधात्मक व्यक्तित्व, जन-जन की पीड़ा के प्रति अपनी करुणा भावना आदि विषयों की बहुत ही प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है। भारत के प्रति कवि के मन में असीम विश्वास और अगाध श्रद्धा है - कवि के शब्दों ही में --

जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में खड़ा वहाँ भारत जीवित, भास्वर है।[16]

यह कविता -संग्रह निश्चय ही कवि की विषय-वस्तु के संचयन एवं उनके अभिव्यंजन में उसकी प्रौढ़ प्रतिभा शक्ति का परिचय देता है और साथ ही उसकी विकासशील सांस्कृतिक जीवन दृष्टि का द्योतक है।

चक्रवाल :

यह चयन-संग्रह सन् 1956 में प्रकाशित हुआ है। चक्रवाल में कवि दिनकर ने 'रेणुका' से लेकर 'नीलकुसुम' तक की उन रचनाओं को संगृहीत किया है जिन्हें उन्होंने स्वयं चुना है और इसी कारण इस संग्रह का महत्व है। इसकी भूमिका में निश्चय ही कवि ने अपनी कविता, रचना-प्रक्रिया, कविता की विशिष्टता आदि को प्रकाशित किया है। यहाँ इस संग्रह का उल्लेख इसलिए आवश्यक है कि कवि ने स्वयं अपनी प्रिय और प्रतिनिधि रचनाओं का चयन किया है।

दिनकर की कविताओं के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं। जो कवि के मूल-संग्रहों से गृहीत हुए हैं। उन सबका परिचय यहाँ आवश्यक नहीं है।

कविश्री :

कविश्री दिनकर की कुछ प्रतिनिधि रचनाओं का संग्रह है। जिसका प्रथम संस्करण सन् 1956 में प्रकाशित हुआ था। यह संग्रह कवि की उत्कृष्ट कविताओं का ही चयन है। मात्र इसके नाम की चर्चा यहाँ आवश्यक है अन्यथा इसकी सभी रचनाएँ उनकी पूर्व के काव्य-ग्रंथों से ली गयी हैं, फिर भी संग्रह का मुख्य स्वर राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, अतीत-गौरव-प्रेम, क्रान्ति और विप्लव, प्रेम और सौन्दर्य तथा मानव नियति है।

सीपी और शंख :

सन् 1957 में प्रकाशित इस संग्रह में 44 कविताएं संगृहीत हैं। कवि इन्हें मौलिक नहीं मानता, क्योंकि इनमें से अधिकांश अनुवाद हैं और कुछ कविताएँ अन्य कवियों की कविताओं से बिम्बित और प्रेरित हैं। दिनकर का अनुवाद फिट्जेराल्ड के उमरख़ैयाम तथा एज़रापाउण्ड के चीनी कविताओं के अंग्रेजी अनुवाद के समान हैं। इस पद्धति को अपनाने के कारण उन्होंने मूल भावों से प्रेरणा ली है, किन्तु अभिव्यंजना

में, बिम्ब विधान में, रूप सृष्टि में उनकी अपनी मौलिकता है। अत: यह सहज ही कहा जा सकता है कि इस संग्रह की रचनाओं में कवि की मौलिकता की ताजगी है।

अनुवाद के मूल में एक और उनकी अन्तर्राष्ट्रीय भावना अर्थात् मानव-मानव को समीप लाने का प्रयास है, तो दूसरी और काव्य-पाठकों की रुचि के परिष्कार की बात भी है और इनके साथ भाषा की शक्ति और संभावनाओं की खोज भी की गयी है। कवि के अनुवाद का मूल दृष्टिकोण सांस्कृतिक और सौन्दर्यवादी है।

कवि ने अनुवाद के लिए जिन कविताओं का चयन किया है। उन्हें मोटे तौर पर तीन वर्गों में रखा जा सकता है। कलात्मक अथवा सौन्दर्यवादी कविताएँ, प्रेम और सौन्दर्य की कविताएँ तथा राष्ट्रीयता और मानवता की कविताएँ।

कलात्मक अथवा सौन्दर्यवादी कविताएँ बिम्ब सृष्टि में, रूप-विधान और प्रतीक विधान में तथा उपयुक्त शब्द-विधान में बहुत ही सफल रही हैं। दूसरों के भाव-बिम्ब अथवा विचार-बिम्ब को आत्मसात् कर उन्होंने उन्हें अपनी वाणी की भास्वरता दीप्ति और अभिव्यक्ति की तरलता प्रदान की है।

दिनकर ने प्रेम और सौन्दर्य सम्बंधी कविताओं का चयन क्यों किया, जबकि अर्द्धशती की अवस्था के कवि को दार्शनिक और विचारक ही होना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि तेजोदृप्त क्रान्ति, विप्लव, राष्ट्रीयता आदि का गान करते-करते कवि का तारुण्य कालावधि में अवश्य बीता है, किन्तु भोगावस्था में ~~अलि~~ अलिप्त रहने के कारण अनुष्ण नहीं हुआ है। समय मिलते ही वह तारुण्य अपनी उष्मा के साथ तरलायित हो उठा है और यही कारण है कि वे प्रेम और सौन्दर्य के काल्पनिक माधुर्य में खो जाते हैं।

कवि की तीसरी श्रेणी की कविताएँ मानव-मंगल, विश्व-संस्कृति और

राष्ट्रीयता को समेटे हुए हैं। कवि दिनकर उस ऊँचाई पर पहुँच गये हैं, जहाँ समस्त संस्कृतियों का संगम होता है। और मानव अपने संकुचित निर्मोक(केंचुली) को उतारकर महान और उदात्त बन जाता है।

नये सुभाषित :

यह रचना जुलाई 1957 में सर्वप्रथम प्रकाशित हुई थी। इसकी भूमिका में स्वयं दिनकर यह स्वीकार करते हैं कि - ये सुभाषित अवकाश के क्षणों में लिखे गये हैं।[17] उनमें से थोड़े ऐसे हैं जो गंभीर कहे जा सकते हैं। बाकी सुभाषित तो ऐसे ही हैं, जिनमें व्यंग्य-विनोद का काफी पुट है और जो बुद्धि तथा हृदय को गुदगुदाना जानते हैं। अवकाश के क्षणों में लिखे जाने पर भी इनमें जो विचार - कणिकाएँ हैं वे कवि की जीवनानुभूति से नि:सृत होने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और वर्तमान जीवन के सर्वांगीण पक्षों की विशेषताओं का उद्घाटन करने में सक्षम हैं। कवि ने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, वैयक्तिक आदि सभी पक्षों का उल्लेख किया है। सांस्कृतिक चिन्तन के विकास क्रम की किसी सरणि को इसमें खोजना अनावश्यक है।

उर्वशी :

यह रचना सन् 1961 में प्रकाशित हुई थी। दिनकर ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि उनके काव्य उर्वशी ने कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्', रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी', अरविन्द की 'उर्वशी' से प्रेरणा तो अवश्य ग्रहण की है पर उसका प्रभाव अत्यल्प ही है। इनके अतिरिक्त दिनकर ऋग्वेद के आख्यान से भी परिचित थे।[18]

उर्वशी में बहुत ही सफल मिथकीय विधान है। उर्वशी का मिथक आकाश तत्त्व है और पुरुरवा का पृथ्वी तत्त्व। कवि ने दोनों का मिलन कराके सनातन नारी तत्त्व और सनातन पुरुष तत्त्व का मिलन करा दिया है।इस काव्य में काम को

अनेक धरातलों पर चित्रित किया गया है। किन्तु अन्त में कवि ने उसे ऊर्ध्वगामी और अतीन्द्रिय बना दिया है।

दिनकर ने उर्वशी काव्य में प्रेम का नया आयाम उद्घाटित किया है। उनके अनुसार काम की सारी सार्थकता प्रेम को लेकर है क्योंकि प्रेम ही काम को पवित्रता प्रदान करता है। उनके अनुसार कोई भी शारीरिक मिलन काम है, किन्तु सभी शारीरिक मिलन प्रेम के पर्याय नहीं हैं। प्रेम वहाँ है, जहाँ शरीर, मन और आत्मा तीनों ही धरातलों पर नर और नारी एकाकार हैं।[19]

प्रेम की गहरायी पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने उर्वशी की भूमिका में लिखा है कि-"नारी के भीतर एक और नारी है, जो अगोचर और इन्द्रियातीत है। इस नारी का संधान पुरुष तब पाता है, जब शरीर की धारा उछालते-उछालते उसे मन के समुद्र में फेंक देती है, जब दैहिक चेतना के परे वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँचकर निस्पन्द हो जाता है, और पुरुष के भीतर एक और पुरुष है जो शरीर के धरातल पर नहीं रहता, जिससे मिलने की आकुलता में नारी अंग-संज्ञा के पार पहुंचना चाहती है।"[20]

इस काव्य में औशीनरी शुद्ध पृथ्वी तत्त्व है। वह मानती है कि नारी का चरम उत्कर्ष मातृत्व में है और यही उसके जीवन की सिद्धि है। वह जीवन को साधना के पथ पर ले जाती है, काम-वासना से बहुत ही उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित अपने पति की मंगल कामना करती है। उपर्युक्त सभी गुण अपनी संस्कृति की ही देन हैं।

उर्वशी काव्य के लक्ष्य के सम्बंध में कवि का मन्तव्य है कि उर्वशी किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए नहीं, प्रेम की अतल गहरायी का अनुसंधान करने के लिए

लिखी गयी है। शुद्ध प्रेम से उठने वाली तरंगें मन और कल्पना के दूर-दूर तटों का स्पर्श करती हैं। मनुष्य क्षण भर के लिए अरूप जगत में खो जाता है। उर्वशी में इसी अरूप लोक का वर्णन है। उर्वशी धर्म नहीं, प्रेम की अतीन्द्रियता का आख्यान है और यही आख्यान उसका आध्यात्मिक पक्ष है। काम या प्रेम के द्वारा मुक्ति, यह विषय उर्वशी का प्रतिपाद्य नहीं है। प्रेम में भी अध्यात्म की निस्सीमता है। इसे ही हम उसका प्रतिपाद्य मान सकते हैं।[21] यह काव्य दिनकर जी की काव्य-यात्रा का सबसे सुन्दर पड़ाव कहा जा सकता है। जहाँ कवि रसवन्ती की मधुर कल्पना को इक्कीस वर्षों पश्चात् शब्दों की सुन्दर अभिव्यक्ति देकर स्वयं को ही लोकप्रिय नहीं बना गया, वरन् हिन्दी साहित्य को भी एक अमूल्य निधि दे गया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष भारतीय संस्कृति के ही तत्त्व हैं। इन्हीं तत्त्वों में से काम को अध्यात्म के धरातल पर कवि ने प्रतिष्ठित कर भारतीय संस्कृति की मान्यता के एक पक्ष को प्रस्तुत किया है। इसलिए यह महाकाव्य सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

परशुराम की प्रतीक्षा :

दिनकर जी का यह कविता-संग्रह जनवरी 1963 में प्रकाशित हुआ है। इसमें अठारह कविताएँ हैं। जिनमें से तीन 'सामधेनी' संग्रह से ली गयी हैं और शेष नवीन हैं। इस संग्रह की विशेषता यह है कि इसकी अधिकांश कविताएँ युद्ध सम्बंधी हैं। दिनकर की व्याख्यान शैली में विशिष्ट ओजस्विता है और यह संग्रह कुरुक्षेत्र की आगे की कड़ी है। चीन के आक्रमण के समय कवि ने परशुराम का स्मरण किया है। परशुराम ने पिता के आदेश पर माता की हत्या की। उस पाप से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने कैलाश के समीप स्थित ब्रह्म कुण्ड में स्नान किया। जहाँ मुट्ठी में बंधा उनका परशु छूटकर गिर गया। उस जाग्रत तीर्थ के जल को पृथ्वी पर लाने का उन्होंने संकल्प किया उसी का फल ब्रह्मपुत्र नदी है। वहाँ आज भी परशुराम कुंड वर्तमान है। इस ब्रह्मकुण्ड अथवा लोहित कुंड में परशुराम पाप से मुक्त हुए थे। वहीं एक बार फिर भारत का पाप छूटा है कवि ने इसीलिए चीन के आक्रमण के समय परशुराम के मिथक का स्मरण किया है। चीन के आक्रमण में भारत की पहली पराजय 'परशुराम की प्रतीक्षा' के आह्वान तथा उसके नाम को सार्थक बनाती है।

कवि अपने इस दृष्टिकोण पर अडिग है कि युद्ध का उत्तर युद्ध है, वीरता का वीरता । वीर को ही अहिंसा शोभा देती है । युद्धकालीन स्थिति के शांति-संदेश और शीतल वाणी पर कवि ने व्यंग्य प्रहार किया है । इतना ही नहीं, वरन् कवि ने तत्कालीन शासन की ढुलमुल नीति की भर्त्सना भी की है ।

कवि ने इस वाणी में यह कहा है कि प्रत्येक जाति का अपना अहं होता है । भारतीय जाति का अहं अत्यन्त गरिमा मंडित है । एक ओर गौतम , महावीर, शंकर और गांधी की परम्परा है तो दूसरी ओर राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, राणा-प्रताप और शिवा की परंपरा है । भारत में शांति और अहिंसा की परंपरा भी है और संग्राम में अपूर्व शौर्य और पराक्रम भी है । चीनियों ने इस गर्वोन्वित जाति को ललकारा था । कवि यह मानता है कि वही जाति स्वतंत्र रह सकती है, जिसमें आत्मगौरव है , त्याग है, शौर्य, साहस और अपनी आन पर मिटने की भावना है । इन सबकी प्रेरणा सांस्कृतिक पुनर्जागरण से कवि ने ग्रहण की है क्योंकि कवि प्राचीन अस्मिता का स्मरण करके नवीन संदर्भों में स्वतंत्रता की दृढ़तापूर्वक रक्षा के लिए संकल्पशील है ।

'जवानियाँ', 'लोहे के मर्द', 'जनता जागी हुई है', 'आज की कसौटी पर गांधी की आग है', 'जौहर', 'आपद् धर्म', 'पाद-टिप्पणी', 'शांतिवादी, 'अहिंसा-वादी का युद्धगीत' और 'इतिहास का न्याय', कविताएँ भी युद्ध काव्य की ही कड़ियाँ हैं । जिनमें प्राय: 'परशुराम की प्रतीक्षा' के वैचारिक स्तर को विभिन्न रूप -रंगों में प्रस्तुत किया गया है ।

यह कविता संग्रह इसलिए विशेष महत्वपूर्ण है कि इसमें कवि ने भारतीय जाति के सुषुप्त शौर्य, साहस और पराक्रम को जगाने के लिए परशुराम के मिथक का

आश्रय लिया है और यह प्रतिपादित किया है कि वीर जाति ही अपने अस्तित्व की रक्षा करने में समर्थ हो सकती है। यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कृति में 'बापू' शीर्षक कविता के नये मोड़ से कवि पुन: 'हिमालय के प्रति' कविता की अपनी मूल चेतना को पुन: जागृत एवं प्रतिष्ठित करना चाहता है।

कोयला और कवित्व :

यह संग्रह जनवरी 1964 में प्रकाशित चालीस कविताओं का संग्रह है। जो 1960 के आस-पास लिखी गयी हैं। इस संग्रह की अंतिम कविता कोयला और कवित्व है। यह कविता विचारोत्तेजक है और इसमें कवि ने जीवन, जगत, श्रम, कर्म, अकर्म, विकर्म और कला के विविध पक्षों को तर्कप्रधान शैली में प्रतिपादित किया है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इस कविता में कवि का सांस्कृतिक चिन्तन उजागर हुआ है।

'पुरानी और नई कविताएँ' में कवि ने एक खास अन्दाज के साथ अपनी बातें कही हैं। कहने का ढंग कलात्मक और हृदयस्पर्शी है। कविता के अनेक अंश ऐसे हैं जो मन और बुद्धि दोनों को प्रभावित करते हैं। 'नदी और पीपल' कविता में कवि ने पीपल को संत माना है और उत्सर्गमयी प्रवृत्ति की प्रशंसा की है। नदी तो स्नेह को भी एक दिन सिकता बना देती है। पर संत तो करुणाद्रवित हो आँसू बहाते हैं। पीपल छाया, शीतलता रूपी करुणा की धारा से प्राणि-मात्र को तृप्त -तुष्ट करता है और उसकी वृत्ति उसी प्रकार विस्मयकारी है, जिस प्रकार संत की, जो भेद- भाव के बिना अपने हृदय की असीम करुणा से जन-मन को शाश्वत विश्रान्ति प्रदान करता है।

कवि ने 'गृह मुख' कविता में यह भी दिखाया है कि विकासशील सभ्यता

ने मानव को सारी सुविधाएँ प्रदान की हैं। पर मन की शांति छीन ली है। प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति चाहता है कि उसे कुछ क्षण ऐसे मिलें जो नितान्त उसके अपने हों, जिनमें वह चिन्तन कर सके और अपने जीवन के गत, वर्तमान और अनागत के क्षणों में तालमेल बैठा सकें, किन्तु ऐसे क्षण उसे उपलब्ध नहीं हो पाते और जनारण्य में भी वह अपने को अकेला महसूस करता है तथा अपने जीवन की रिक्तता को मिथ्या प्रपंचों से भरने का प्रयास करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगीकरण और वैज्ञानिक आविष्कारों की ओर तीव्रता से बढ़ते हुए भारतीय शासन के अभियान के सन्दर्भ में इन कविताओं पर विचार अपेक्षित है। दिनकर मूलत: सांस्कृतिक चिंताधारा के कवि हैं और इस चिन्तन में जीवन और जगत के नवीनतम आयामों, मानव जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने वाले वैज्ञानिक आविष्कारों आदि का भी वे युगानुरूप सामंजस्य स्वीकार करते रहे हैं जो कि उनके विचार प्रधान विवेचनों में हम दृष्टिगत कर चुके हैं। अत: ये कविताएँ आज के वैज्ञानिक यंत्रवाद और भारतीय मानवतावाद के बीच सामंजस्य की कड़ी प्रस्तुत करने वाली उनकी संवेदना प्रधान विचार दृष्टि का संवहन करती हैं। इसी प्रकार 'धन्यवाद', 'मैं सचमुच नहीं मरूँगा', 'पास्तरनेक' शीर्षक कविताओं के विषय में भी कहा जा सकता है।

कवि को विश्वास है कि भारत समस्त परिवर्तनों के थपेड़ों को सहन कर सकेगा और भविष्य में उसका जो विकास होगा वह वांछनीय ही होगा। यांत्रिक विकास और यांत्रिक संस्कृति के महत्त्व को कवि अस्वीकार नहीं करता, पर उसकी दासता कवि को स्वीकार नहीं, क्योंकि वह मनुष्य में एक प्रकार की जड़ता ला देती है। गांधी, कांस्य प्रतिमा, समाधान, स्मृति आदि कविताएँ भी इसी सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

मृत्ति-तिलक :

इस रचना का प्रकाशन वर्ष तो सन् 1964 है किन्तु इसमें कवि की सन् 1931

से लेकर 1961 तक की कविताएँ संगृहीत हैं। शैली की विविधता के साथ विषयों का वैविध्य इसमें मिलता है। इस संग्रह में 27 रचनाएं संगृहीत हैं। जिनमें राजर्षि टंडन, भारत-व्रत, मानवेन्द्र, राजेन्द्र, भारत का आगमन, तंतुकार, जमीन दो-जमीन दो, मृत्ति तिलक आदि कविताएँ सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। जीवन के विविध पक्षों समाज, धर्म, राष्ट्रीयता व समता की भावना आदि को कवि ने काव्य में अभिव्यक्त हुआ है।

कवि ने भारतीय संस्कृति के बहुत सारे तत्त्वों को एक साथ राजर्षि टंडन और मानवेन्द्र राजेन्द्र में देखा है। प्रधानत: वे तत्त्व हैं। क्षमा, शांति, करुणा, ममता आदि। साम्य स्थापना की बलवती कामना कवि में है। जिसे उसने 'भारत-व्रत' कविता में बहुत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

दिनकर एवं यंत्र प्रधान संस्कृति की स्वार्थ भावना और छीना-झपटी पर प्रहार करते हैं और यह विश्वास दिलाते हैं कि वह दिन कभी न कभी अवश्य आएगा, जबकि शोषण का अंत होगा और सभी को उनका स्वत्व प्राप्त होगा। 'जमीन-दो-जमीन दो' कविता में कवि ने समता की भावना को उजागर किया है। अभाव, द्वेष, दुर्भाव आदि को दूर करने के लिए जमीन चाहिए। समता, शांति, पवित्रता और प्रसन्नता के लिए जमीन चाहिए। 'मृत्ति-तिलक' कविता में भारत-भूमि की मिट्टी की गरिमा का बोध होता है। यह कहा जा सकता है कि इन कविताओं की अनुभूति विनोबा जी के भूदान आंदोलन से प्रभावित हैं।

'संजीवन घन दो' कविता में भारत की प्राचीन संस्कृति की स्तुति है। गौतम बुद्ध के प्रण, अशोक की सत्य-निष्ठा आदि के माध्यम से कवि ने प्राचीन संस्कृति के गौरव का गान किया है और यह आशा व्यक्त की है कि नव मानवता को उससे शीतल ज्ञान का अंजन प्राप्त हो सकता है।

इस प्रकार देखा जाय तो इस कविता संग्रह की प्रत्येक कविता का अपना विशिष्ट सांस्कृतिक महत्त्व है और इस संग्रह से दिनकर की संस्कृति-विषयक बहु-आयामी दृष्टि का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

आत्मा की आँखें :

यह रचना सन् 1964 में प्रकाशित हुई। इस समय हिंदी की काव्य यात्रा नई कविता के पड़ाव को पार कर चुकी थी। दिनकर जी ने इस काव्य संग्रह से पूर्व 'सीपी और शंख' अनेक भाषाओं से चुनी हुई कविताओं के अनुवाद के रूप में प्रकाशित हो चुकी थी, जिनमें कवि केवल अनुकृति न करके अपनी प्रातिभ शक्ति के द्वारा उन्हें मौलिकता व ताजगी प्रदान करता है। इसी प्रकार डी॰एच॰लारेन्स की कविताओं को आधार पर उन्होंने 'आत्मा की आँखें' संग्रह की कविताओं की रचना की है। अत: इसमें मौलिकता का आभास सहज ही होता है।

इस संग्रह की भाषा के सम्बंध में दिनकर का कहना है कि-' इन सभी कविताओं की भाषा बुनियादी हिन्दी है' लारेन्स की जिन कविताओं पर से ये कविताएँ तैयार हुई हैं, उनकी भाषा भी मुझे बुनियादी अँग्रेजी के रूप में दिखाई पड़ी- सरल, मुहाविरेदार, चलतू और पुरजोर, जिसमें बुनावट का नाम भी नहीं है।'[21]

इस संग्रह की कुल 70 कविताओं में विविधता है कुछ शुद्ध कलात्मक कविताएं हैं, किन्तु अधिकांश कविताएँ किसी न किसी रूप में दिनकर के जीवन और जगत् के प्रति दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करती हैं। अत: इनमें संस्कृति के विविध आयाम उद्घाटित होते हैं। अकेलापन, रहस्यवाद, एकाग्रता, प्रेम-भावना, स्वर्ग-नरक की परिकल्पना, ईश्वर, जीवन और मृत्यु धर्म, पाप-पुण्य, इंसानियत, मानवीय गुण,

क्रांति, आर्थिक विषमता, शोषण, पुरुषार्थ चतुष्टय में से प्रधानत: धर्म, अर्थ और काम सामाजिक व्यवस्था, कुंआ और बाल शोचिक संस्कृति, मशीन के अभिशाप, नर-नारी के स्वाभाविक स्वरूप, श्लीलता और अश्लीलता, मैत्री आदि विषयों को कवि ने अपनी दृष्टि से देखा है और उनके महत्त्व को रेखांकित किया है। वस्तुत: विषय वस्तु और अभिव्यंजना शिल्प दोनों दृष्टियों से यह संग्रह महत्त्वपूर्ण है और संस्कृति के जो स्थूल-सूक्ष्म तंतु बहुरंगी रेशमी बुनावट को प्रस्तुत करते हैं, वे अपने आप में महान व उदात्त हैं।

हारे को हरिनाम :

दिनकर जी की यह रचना नवम्बर 1970 में प्रकाशित हुई है। हारे को हरिनाम कविता इस संग्रह की अंतिम कविता है और यही इस संग्रह का शीर्षक है, जिससे यह प्रतिभाषित होता है कि कवि ने जीवन में पराजय स्वीकार कर ली है। कवि स्वयं कहता है -

रम उसमें, जो है शान्ति में रमा,
हृदय आकुल मत होना।[22]

कवि एक प्रकार से भौतिक विभूति, सुख-समृद्धि आदि से अपने को समेटकर हरि के चरणों पर आत्मदान कर देना चाहता है, किन्तु इस संग्रह कविताओं का मूल स्वर यही नहीं है।

इस संग्रह में 102 कविताएँ हैं। समस्त कविताओं को देखने पर लगता है कि इनका मूल स्वर सौन्दर्यवादी एवं शुद्ध कलात्मक है, किन्तु कला और अनुभूति का अद्भुत सामंजस्य है।

अत: कवि कलावाद अथवा सौन्दर्यवाद से अतीत की उस स्थिति में पहुँच गया है, जहाँ कवि की अनुभूति की संवाहिका बनकर कला आती है और कविता का सृजन हो जाता है। 'मोहिं तो मेरो कवित्त बनावत' । कभी घनानन्द ने ऐसा कहा था । दिनकर स्वयं कहते हैं 'केवल कवि ही कविता नहीं रचना, कविता भी बदले में कवि की रचना करती है।'[23] इस संग्रह में अधिक कविताएँ ऐसी हैं जो शुद्ध कविता हैं और साथ ही उनमें कवि की रागात्मक वृत्ति की ऊष्मा से द्रवित बौद्धिकता है, दिनकर की यह बौद्धिकता कोरी बौद्धिकता न होकर रागानुशासित बौद्धिकता है और यही कारण है कि वह विस्मय या कुतूहल का सृजन न कर मानसिक तन्मयीभवन की स्थिति का सृजन करती है। स्वयं कवि के अनुसार उन्होंने आम-समाजीकरण(self-socialization) किया है, जब कि नयी कविता के कवि आत्म विलगाव(self-alienation) में विश्वास रखते हैं।[24] वस्तुत: इस संग्रह में व्यंजित सौन्दर्य पारदर्शी और बहु-आयामी है, जिसकी विस्तार से चर्चा आगे के प्रकरण में की जाएगी ।

शुद्ध कविता और इन्द्रधनुषी सौन्दर्य के अतिरिक्त इस संग्रह में 'व्यक्ति और सत्ता', 'आत्म-दर्शन', 'जीवन के विविध आयाम, 'नियति', 'वैराग्य', समरसता, आवागमन, प्रेम-परम्परा, पाप-पुण्य, काम, मोक्ष, राजनीतिक चेतना, आर्थिक विषमता आदि विषयों का कवि ने निरूपण किया है। कवि अपनी अभिव्यक्ति में अपनी कला-कुशलता का सफलतापूर्वक परिचय दे सका है। इस अभिव्यक्ति में ताजगी और ऊष्मा है। यह संग्रह निश्चय ही उर्वशी के आगे की कड़ी है। इसमें सीपी और शंख, कोयला और कवित्त्व, आत्मा की आँखें आदि संग्रहों की कलात्मक पूर्णता का पुंजीभूत रूप देखा जा सकता है। प्राय: सभी कविताओं के विषय में कवि का यह आत्मकथ्य सर्वथा चरितार्थ होता है -

मुमकिन हो, वह ताजगी हो,
जिसे तुम थकान मानते हो ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि इन कविताओं में प्राय: सामाजिक-सांस्कृतिक चिन्तन मुखरित नहीं हुआ है । निजी संघर्ष की विविध भूमियों के कड़ुवे-खारे अनुभव तथा शिथिल प्राय: प्रौढ़ावस्था में श्लथप्राय यौवन की हलचल यहाँ सुप्त सी दृष्टिगोचर होती है । प्रतीत होता है कि यह कविता निजी-संघर्ष है जिसकी सामग्री देश के सांस्कृतिक अध्ययन के दृष्टिकोण से उतनी उपयोगी नहीं है। हाँ, कवि की निजी संस्कृति के परवर्ती आयामों को यहाँ अवश्य दृष्टिगत किया जा सकता है ।

दिनकर की सूक्तियाँ :

इनकी सूक्तियों का प्रथम संस्करण सन् 1965 में प्रकाशित हुआ है । ये सूक्तियाँ उनके विभिन्न काव्य-संग्रहों से संगृहीत हैं । इसमें 45 सूक्तियाँ हैं जो विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण हैं । किन्तु इन पर अलग से विचार करना आवश्यक नहीं है । यह अवश्य है कि इनमें वैविध्य है और ये कवि के व्यापक दृष्टिकोण के परिचायक हैं ।

संचयिता :

उर्वशी के भारतीय ज्ञानपीठ से पुरस्कृत होने के बाद ज्ञानपीठ द्वारा दिनकर की कविताओं का प्रतिनिधि संग्रह 'संचयिता' के नाम से प्रकाशित हुआ । जिसमें रेणुका से लेकर हारे को हरिनाम तक की प्रतिनिधि और श्रेष्ठ रचनाओं को सम्मिलित किया गया है । इस संग्रह का महत्त्व इसलिए है कि इसमें दिनकर के कवि का सम्यक् विकास परिलक्षित होता है और इसमें उनकी मनोभूमि के सभी कोने

स्थान पा सके हैं । कवि के समस्त संग्रहों के परिचय दिये जा चुके हैं । अत: यहाँ संचयिता का उल्लेख मात्र पर्याप्त है ।

रश्मिलोक :

रश्मिलोक में रेणुका से लेकर हारे को हरिनाम कविता संग्रहों की 147 प्रतिनिधि रचनाएँ संग्रहीत की गयी हैं । यह संस्करण सन् 1974 में प्रकाशित हुआ है । इसमें दिनकर की अर्द्धशती की कविता यात्रा के ही विविध रूप हैं और उनके काव्य में ताजगी है । पचास वर्ष तक लिखने के बाद भी वे कोयल के समान नवीन और हरे पत्ते के समान ताजे हैं । रश्मिलोक वैयक्तिक अनुभूति का काव्य नहीं है, अ उसके भीतर भारत के पचास वर्षों के भावात्मक और आध्यात्मिक जीवन का इतिहास प्रतिबिम्बित है ।

दिनकर ने रश्मिलोक की भूमिका में भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार समारोह के अभिभाषण में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही है 'जिस तरह मैं जवानी भर इकबाल व रवीन्द्र के बीच झटके खाता रहा हूं, उसी प्रकार मैं जीवन भर गांधी और मार्क्स के बीच झटके खाता रहा हूं । इसलिए उजले को लाल से गुणा करने पर जो रंग बनता है । वही रंग मेरी कविता का रंग है । मेरा विश्वास है कि अनन्तोगत्वा यही रंग भारतवर्ष के व्यक्तित्व का भी होगा ।[25] वस्तुत: 'रश्मि-लोक' उनके इस वक्तव्य का साक्षी है । चूँकि यह पिछले संग्रहों की ही कविताओं का संग्रह है अत: इस पर स्वतंत्र रूप से विचार करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता ।

मूल्यांकन :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में सांस्कृतिक अध्ययन के दृष्टिकोण से दिनकर जी की रचनाओं का जो परिचय दिया गया है । उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि दिनकर की कविता की मूल चेतना राष्ट्रीयता है तथा उसमें अपने युग के प्रति

प्रबुद्ध अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न पूर्ण सजगता है। अपने पूर्ववर्ती राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा के कवियों से प्रेरणा ग्रहण करने के साथ वैचारिक भूमियों में विचरण करती हुई उनकी काव्य चेतना संस्कृति के अनेक आयामों को सन्निविष्ट करती है। 'रसवन्ती' और 'उर्वशी' जैसी काव्य कृतियों में एक ओर छायावादी प्रेम और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर हुंकार, रेणुका, द्वन्द्वगीत, सामधेनी, बापू, इतिहास के आँसू, धूप और धुँआ, दिल्ली, नीम के पत्ते, नीलकुसुम जैसी कृतियों में युगीन-सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना, युग बोध तथा जनमानस के प्रति गहरी संवेदना के स्वर मुखरित हुए हैं। इसी प्रकार परशुराम की प्रतीक्षा, रश्मिरथी और कुरुक्षेत्र जैसी कृतियों में व्यक्तिगत अन्तर्द्वन्द्व उठाकर पौराणिक सन्दर्भों के सहारे युगीन प्रश्नों को उठाया गया है। अतः समग्रतया मूल्यांकन के आधार पर हम कह सकते हैं कि उनका काव्य व्यापक मानवीय संवेदना का प्रतिनिधित्व करता है।

विकास की दृष्टि से कवि की काव्य-यात्रा के दो आयाम हमारे सामने आते हैं। कुरुक्षेत्र की पूर्व की सभी रचनाओं को मूलतः भावपरक माना जा सकता है। रेणुका व हुंकार में उनकी भावप्रवणता वीरता व क्रान्ति को लेकर चरम सीमा को पार कर गयी है। द्वन्द्वगीत व रसवन्ती में वैयक्तिक भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। 'कुरुक्षेत्र' में वे पहली बार एक विचारक और द्रष्टा के रूप में हमारे समक्ष आते हैं, जहाँ पर कविता बुद्धि से संपुष्ट होकर अभिव्यक्ति पाती है। इस प्रकार राष्ट्रीय-सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विषयों को लेकर ही उनकी कविता-यात्रा आगे बढ़ती है। 'कुरुक्षेत्र' में उन्होंने जिन युद्धजन्य स्थितियों का चिन्तन किया था। परशुराम की प्रतीक्षा में समय के झंझावात से टकराकर ही आग फिर से भड़ककर प्रज्ज्वलित हो उठती है।

तीसरा उल्लेखनीय तथ्य यह है कि कवि दिनकर परंपरा का मोह कभी छोड़ नहीं पाये। वे किसी भी विषय पर लिखते हैं तो अतीत का गौरवमय चित्र उनके सम्मुख रहता है। इसीलिए आज की समस्या पर लिखते हुए भी वे पौराणिक

आख्यानों की ओर प्राय: मुड़ जाते हैं। रश्मिरथी में कर्ण के चरित्र को महनीय बताकर वे आधुनिक युग की समस्या जातिभेद का खण्डन करते हैं।

सीपी और शंख अनूदित तथा आत्मा की आँखें अनुकृत काव्य-संग्रह हैं। जिनमें कवि ने धर्म, अर्थ, काम तथा सामाजिक व्यवस्था आदि को अपनी प्रतिभा शक्ति द्वारा मौलिक रूप प्रदान किया है। नये सुभाषित में कुछ चुने हुए सुभाषित हैं। जिनमें व्यंग्य-विनोद का पुट है किन्तु ऐसी कृतियों के आधार पर उनके विकास क्रम पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'उर्वशी' दिनकर जी की काव्य-यात्रा का सबसे सुन्दर पड़ाव कहा जा सकता है। इसमें काम व प्रेम की समस्या को कवि ने दर्शन तथा मनोविज्ञान के द्वारा उद्घाटित किया है। 'कोयला और कवित्व', मृत्तितिलक तथा उनके अन्य संग्रहों में उनका वही प्रौढ़ चिन्तन का रूप उभरा है। जिसे उन्होंने जीवन के विविध पक्षों का चिन्तन कर इन काव्य-संग्रहों में ढाला है।

अत: काव्य की विकास यात्रा यह भी निर्दिष्ट करती है कि कवि वैचारिक भूमि से दो कदम आगे बढ़कर सूक्ष्म कलात्मक उपलब्धियों की नयी जमीन तोड़ने को उत्सुक है। काव्य-चेतना के इन पड़ावों के साथ-साथ उनकी कालानुसरण की क्षमता एवं तद्गत सजगता आदि से अन्त तक देखी जा सकती है और संभवत: इसी कारण उन्हें हम एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक काव्य के प्रणेता के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। आज की युगीन चेतना के केन्द्र में सामाजिक आर्थिक-व्यवस्था सर्वाधिक प्रभावित करती है। अत: सर्वप्रथम दिनकर के काव्य के माध्यम से संस्कृति के इस पक्ष पर विचार किया जा रहा है। जो हमारे परवर्ती अध्याय का विषय है।

--

सन्दर्भ- संकेत

1- डॉ0 रामदरश मिश्र- हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम-पृ0 58, शीर्षक- रामधारी सिंह दिनकर ।

2- दिनकर, प्रणभंग, भूमिका अंश, पृ0 7

3- वही, पृष्ठ वही ।

4- वही, द्रष्टव्य भूमिका अंश, ले0डॉ0 विश्वमोहन कुमार सिंह,पृ0 11

5- दिनकर, हुंकार, पृ0 56, शीर्षक-हिमालय ।

6- दिनकर, कुरुक्षेत्र, पृ0 18

7- दिनकर, रश्मिलोक, मेरी काव्य यात्रा, पृ0 31

8- दिनकर, सामधेनी, पृ0 35

9- दिनकर, बापू, भूमिका अंश ।

10- दिनकर, वही, पृ0 18

11- दिनकर, धूप और धुंआ, पृ0 3

12- वही, द्रष्टव्य, पृ0 71

13- दिनकर, रश्मिरथी, पृष्ठ-4

14- दिनकर, दिल्ली, भूमिका अंश ।

15- दिनकर, काव्य की भूमिका, पृ0 42

16- दिनकर, नीलकुसुम, पृ0 94

17- दिनकर, नये सुभाषित, भूमिका

18- दिनकर, उर्वशी, भूमिका पृष्ठ 'क'

19- दिनकर, रश्मिलोक, मेरी काव्य यात्रा पृ0 (ड0)

20- दिनकर, उर्वशी, भूमिका पृष्ठ(ख)

21- दिनकर, आत्मा की आँखें,भूमिका, पृ0 4

22- दिनकर, हारे को हरिनाम, पृ0 160

23- वही, द्रष्टव्य, पृ0 3-24

25- दिनकर, रश्मिलोक, भूमिका ।